मानविकी और शिक्षा

हिमांशु पण्ड्या

मैं यह मानता हूं कि प्राथमिक शिक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाना ज्यादा मुश्किल काम है। हमसे ज्यादा मुश्किल काम आप करते हैं। मैं हमेशा उसे ज्यादा चुनौतीपूर्ण मानता हूं। हमारे देश में व्यवस्था का जो ढांचा है वह कुछ इस तरह का बना दिया गया है जिसमें विश्वविद्यालय के शिक्षकों को ज्यादा बुद्धिजीवी और ज्यादा तनख्वाह वाला बना दिया गया है। मेरे हिसाब से प्राथमिक शिक्षा के शिक्षक सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण काम करते हैं। मेरी हमेशा हसरत रही कि मैं यह काम कर पाऊं या कम से कम उसमें कुछ जुड़ पाऊं। इसके तहत पढ़ता रहता हूं, समझता रहता हूं, इस तरह के सत्रों में सहभागिता करता रहता हूं, यह पहली बात है।

दूसरी बात यह है कि अगर यह सत्र एक-डेढ़ बजे तक चलेगा तो मैं लगातार दो घण्टे आपको भाषण नहीं दूंगा। पहले तो यह नैतिक रूप से भी गलत है और दूसरा यह रणनीतिक रूप से भी गलत है। क्योंकि इसके बाद मेरा गला इस लायक नहीं रहेगा कि मैं कल फिर भाषण दे पाऊं। इसलिए मैं कोशिश यह करूंगा कि अगले आधा-पौन घण्टे आपसे थोड़ी-सी बात करूंगा और उसमें कुछ सवाल छोड़ूंगा कुछ बहस के मुद्दे छोड़ूंगा। कुछ सार्वजनिक स्थापित बाते हैं जो आप तक पहुंचनी चाहिए वो कहूंगा कुछ मेरे अपने विचार भी कहूंगा जिनमें कुछ बहस के लायक हो सकते हैं। और चाहूंगा कि आप मुझसे सवाल करें, बातचीत करें और हम मिलकर आपके सवालों के आधार पर बातचीत को किसी दिशा में ले जाएं।

जब मैंने 11वीं कक्षा पास की तो मुझे 11वीं के बाद 12वीं कक्षा में एडमिशन मिला। आप लोगों को याद होगा कि 12वीं कक्षा बाद में जोड़ी गई थी। मैं राजस्थान का पहला बैच था जिन्होंने 12वीं कक्षा पढ़ी। मुझसे पहले मेरी बड़ी बहन थी जो 11वीं पढ़कर 'फर्स्ट ईयर' में आ गई थी। मुझे मन में गुस्सा भी आता था कि मेरी बहन मुझसे दो साल आगे हो गई। मैंने अपने पिताजी से पूछा कि मुझे यह एक साल और क्यों पढ़ना है? मेरी बहन 11वीं पढ़कर फर्स्ट ईयर में आ गई और मैं अभी एक साल और बैठा हूं स्कूल में और स्कूल छूटा ही नहीं। स्कूल छूटने की बड़ी जल्दी होती है, आपको पता ही होगा! पिताजी ने कहा कि बेटा ज्ञान बहुत बढ़ रहा है। अब वो 11 कक्षाओं में समा नहीं रहा है इसलिए एक कक्षा बढ़ा दी गई है। क्योंकि बातें बढ़ गई हैं, सूचनाएं बढ़ गई है, जानकारियां बढ़ गई हैं, लोगों ने दुनिया को ज्यादा जाना है, विस्तार हुआ है ज्ञान का, ज्ञान का विस्तार हुआ है तो एक साल और बढ़ा दिया गया है। हालांकि मैं बहुत छोटा था लेकिन मुझे यह बात कुछ गड़बड़ लगी। मुझे लगा कि ज्ञान का विस्तार होने पर एक साल बढ़ गया है तो आगे 10, 15, 20 साल में ज्ञान का विस्तार होगा तो एक साल और बढ़ जाएगा। ऐसे ही अगर एक-एक साल बढ़ता जाएगा तो एक ऐसा समय आएगा कि विद्यार्थी पढ़ता ही रहेगा और ज्ञान पूरा ही नहीं होगा। क्योंकि वो पढ़ता जाएगा, पढ़ता जाएगा फिर भी उसे कहेंगे कि भई अभी तो ज्ञान बचा है आपके जानने के लिए। दरअसल तत्कालीन प्रधानमंत्री थे उन्होंने भी वही बात कही थी जो मेरे पिताजी ने कही थी। न मेरे पिता की गलती है और न उस समय के प्रधानमंत्री की गलती है। इन दोनों की गलती मैं नहीं बता रहा हूं। क्योंकि

ये उस समय की समझ थी। उस समय के शिक्षाशास्त्री यही मानते थे कि ज्ञान का विस्फोट हो रहा है। 80 के दशक के अन्त में यह मुहावरा था 'ज्ञान का विस्फोट'। ज्ञान का विस्फोट कुछ नहीं होता है। क्योंकि अगर आप इस तरह से सोचना शुरू करेंगे तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान कोई संचित राशि है, कोई भण्डार है, कोई संपत्ति है जिसे एक से दूसरे को दिया जा रहा है। मतलब एक पोटली है जो मैंने उठाकर अपने विद्यार्थी को दे दी और भविष्य में वह पोटली बढ़ती जाएगी, मोटी होती जाएगी, भारी होती जाएगी और ज्ञान का बोझा लादे-लादे विद्यार्थी चलता रहेगा। ऐसा नहीं होता। ज्ञान कोई संचित राशि नहीं है। क्योंकि अगर ज्ञान कोई संचित राशि है तो फिर यहां से वहां देने में ज्ञान कुछ घट जाएगा। जैसे सोने का यदि आप कुछ बनवाने जाएंगे तो थोड़ा-थोड़ा घट जाएगा। अगर ज्ञान कोई संचित राशि हो, तो एक से दूसरे के पास जाते-जाते कुछ कम हो जाएगी। इसका अर्थ यह हुआ कि मैं जितना जानता हूं, मेरा विद्यार्थी उससे थोड़ा कम जानेगा, क्योंकि एक राशि थी जो मैंने उसको दी। पूरी की पूरी कौन दे पाता है तो थोड़ी कम मिलेगी उसको। उससे अगली पीढ़ी को थोड़ा और कम मिलेगी। तो ज्ञान घटता जाएगा। जबकि है उल्टा। शिक्षा का उद्देश्य है इसको बढ़ाना। ज्ञान संचित राशि नहीं है, ज्ञान एक सहभागी प्रक्रिया है। जिससे कि विद्यार्थी आगे बढ़ सके और वे कुछ चीजें जो मुझे नहीं पता थीं मेरा विद्यार्थी ढूंढ सके और उससे अगली पीढ़ी और ज्यादा। अगर ज्ञान संचित राशि होती तो मनुष्य आज भी पत्थर पर पत्थर रगड़कर आग जला रहा होता। हम जो इतने प्रयोग, इतने आविष्कार करके दुनिया को इतना आगे तक ला पाए वो किसी संचित राशि के बतौर नहीं ला पाए। (वैसे बाद में मुझे लगा कि 12वीं कक्षा जो लाई गई, उससे कुल मिलाकर फायदा हुआ। फायदा इसलिए हुआ कि हमने कॉलेज के स्तर पर जाने वाले विद्यार्थियों को एक साल देर से भेजा। तो उनका मानसिक स्तर और ज्यादा अच्छा हो पाया। मूल तर्क तो बिलकुल गड़बड़ था लेकिन दूसरी दृष्टि से यह बहुत अच्छा साबित हुआ। क्योंकि 11वीं तक शायद बच्चा थोड़ा कम फैसला ले पाता है कि उसे जीवन में क्या बनना है। एक साल और मिलता है तो थोड़ा अच्छे से सोच पाता है, कम से कम मैं अपने बचपन के आधार पर जानता हूं कि उस एक साल के अन्दर-अन्दर मैं काफी सारे फैसले ले पाया था।)

ज्ञान साथ-साथ मिलकर सीखने का और आगे बढ़ कर कुछ दूसरी चीजें ढूंढ़ पाने का नाम है, जिसमें मैं विद्यार्थी के साथ कुछ प्रयोग कर रहा हूं, जिसके आधार पर मैं जितना जान पाया वो उससे ज्यादा आगे कुछ जान सकता है। यदि मैंने जो दिया, वही उसने लिया हो आज्ञाकारी विद्यार्थी की तरह तो बात नहीं बनेगी। दुनिया आगे बढ़ती है असहमतियों से, बहसों से, संशोधन से। इसी का नाम शिक्षा है। कृष्ण कुमार जी ने अपने एक व्याख्यान में इसे गौतम बुद्ध के हवाले से समझाया है। गौतम बुद्ध ने इसके लिए यान का रूपक इस्तेमाल किया है। हीनयान, महायान, नवयान आपने सुने होंगे। यान का रूपक यानी पानी का यान। वायुयान की बात नहीं हो रही है, क्योंकि गौतम बुद्ध के समय वायुयान की परिकल्पना वैसे भी नहीं थी, यानी यह बात है नाव की। मुझे बहुत दिलचस्प उदाहरण लगता है तो मैं आपसे थोड़ा धैर्य से इसे समझने की दरख्वास्त करूंगा। दो लोग हैं गुरू और शिष्य और दोनों नदी के इस पार बैठे हैं। रूपक की तरह समझिए, नदी के उस पार ज्ञान है यानि जो उस पार पहुंचा उसने ज्ञान पा लिया। अब कई तरह के ज्ञान के रूप होते हैं। एक ज्ञान का रूप ऐसा होता है जिसमें जो उस पार गया वो इस पार नहीं आया। उस पार गया, ज्ञान पाया, वो ज्ञान बांटने का नहीं था, उसके अपने पाने का था। उदाहरण के लिए डॉक्टर, डॉक्टर जो पढ़ रहा है वो बाद में सबको पढ़ाने नहीं बैठा है। अपने ज्ञान का इस्तेमाल करके दुनिया की सेवा कर रहा है। वो उस पार चला गया है, उसको उस पार से लौटने की जरूरत नहीं है। लौटने की जरूरत है शिक्षक को। अब शिक्षक और विद्यार्थी में जो शिक्षक है वो उस पार हो आया है और विद्यार्थी अभी इसी पार है। शिक्षक को विद्यार्थी को यह समझाना है कि उस पार चलना है, पार बहुत खूबसूरत है, उस पार एक नखलिस्तान है, इस पार से उस पार ज्यादा हरियाली है, उस पार एक सुन्दर संसार है। लेकिन विद्यार्थी को शिक्षक कैसे समझाएगा जब विद्यार्थी ने उस पार क्या है कभी देखा नहीं है। जो देखा ही नहीं उसको आप कैसे समझाएंगे कि वो कितना सुन्दर है। एच जी वेल्स एक बहुत प्रसिद्ध लेखक हैं, वो 'साइंस फैंटेसी' लिखते हैं। उन्होंने एक कहानी लिखी जिसमें एक आदमी गलती से अंधों के देश में चला जाता है। वहां पर सारे अंधे हैं, वहां वह उनको समझाने की कोशिश करता है कि आंखें कितनी बड़ी चीज है और कोई नहीं समझता उसकी बात। क्योंकि जिनके पास आंखें हैं ही नहीं उन्हें पता ही नहीं कि आंखें क्या होती है और

वो वहां जाके यह पाता है कि जिनके पास आंखें नहीं वो बिना आंखों के भी सब कुछ कर पा रहे हैं अच्छे से। उनकी अन्य इंद्रिया इतनी शक्तिशाली हैं कि वो आवाज से या गंध से या अन्य तरीकों से, किसी की आहट को, किसी के आने को, किसी के जाने को उससे पहले पकड़ लेते हैं। और ये जो सब अंधे हैं ये थोड़े-थोड़े दिनों में नायक के पपोटे टटोलते हैं। कहते हैं कि तुम्हारा ये गड़बड़ है। ये थोड़े उभरे-उभरे से हैं, ये ठीक करवाने पड़ेंगे ऑपरेशन करके। वो उनके हिसाब से बीमारी थी, जिसको ठीक करके वो उसे अपना जैसा करना चाहते थे। मेरा कहने का मतलब यह है कि जिसके पास जो नहीं है उसे उसका महत्व समझाना दुनिया का सबसे मुश्किल काम होता है। वो काम शिक्षक को करना होता है। क्योंकि उसे विद्यार्थी को जो उस पार की दुनिया है उसका वैशिष्ट्य बरकरार रखते हुए इस तरह से समझाना है कि उसको पाने की आकांक्षा उसके भीतर पैदा हो और उसे यह सामर्थ्य महसूस हो कि मैं यह कर सकता हूं। ध्यान दीजिए, मैंने तीन बातें कहीं हैं। पहली, उस दुनिया की सारी विशिष्टताएं जो हैं, वो समझा पाए। दूसरी, उसको उसकी भाषा में समझा पाए ताकि उसे वो महत्व समझ में आए और तीसरी, वो उसके अन्दर यह इच्छा और उत्साह पैदा कर पाए कि मुझे उस पार जाना है। ये तीन काम शिक्षक के हैं।

समझाने में आप इतना डरा देंगे विद्यार्थी को कि उसको लगेगा कि रहने दो बाबा होगा बहुत अच्छा लेकिन मैं कैसे जाऊंगा! यह हमारे देश में होता है। अगर ड्रॉपआउट की संख्या आप देखें तो कितनी ज्यादा है, वह किसकी द्योतक है? इस देश में आत्महत्या करने वाले बच्चों की संख्या पांच गुणा ज्यादा छलांग लगा चुकी है। हमें इसकी गंभीरता को समझना होगा। इसके पीछे ऐसा नहीं कि एक ही कारण है, इसके पीछे बहुत सारे कारण हैं। यह भी कारण है कि रोजगार बहुत कम पैदा हो रहे हैं। जितने रोजगार पैदा होने चाहिए उसका 10वां हिस्सा भी नहीं पैदा हो रहे हैं। बेरोजगार घूम रहे लोग आत्म हत्या करेंगे, यह स्वाभाविक आशंका हो सकती है लेकिन स्कूल में पढ़ रहा बच्चा अगर आत्महत्या कर रहा है तो यह तो समझने की बात है कि रोजगार के संकट का उतना सामना उसको अभी तक नहीं करना पड़ रहा है कि वह आत्महत्या करने पर विवश हो जाए। उसको उस खौफनाक स्थिति का अंदाजा तो तब पड़ेगा ना जब वो बी.ए. या एम.ए. कर लेगा। क्योंकि हमारे देश में तो बच्चे 10वीं, 11वीं, 12वीं, बी.ए., एम.ए. बिना सोचे करते जाते हैं। मतलब पढ़ते जाना जब तक नौकरी के लिए खाली न हो जाएं कि अब सारी पढ़ाई कर ली और बाजार में हम खाली खड़े हैं, आओ हमें कोई नौकरी दे दो और कोई देने वाला नहीं होता है। इस खौफनाक स्थिति का सामना तो काफी बाद में करना पड़ता है। उस डर को क्या स्कूल के बच्चे पहले ही इतना महसूस कर रहे हैं कि वह आत्महत्या कर रहे हैं? मुझे लगता है कि ये डर असली कारण नहीं है, असली कारण है साथियों का दबाव, सब कुछ जान लेने का आग्रह और शिक्षा में सबसे आगे रहने की होड़, वो इतना दबाव पैदा कर रही है उनके भीतर कि वो आत्म हत्या कर रहे हैं। मतलब वो तात्कालिक दबाव ज्यादा हैं भविष्य का डर कम है, ऐसा मेरा मानना है।

मेरे विचार से इसका मुख्य कारण यही है कि हम लोगों ने सूचना को ज्ञान समझ लिया है। ये कब पैदा हुआ, वो कब पैदा हुआ, इसकी लड़ाई कब हुई, ये कब हुई, वो कब हुई। बचपन में एक चुटकुला हम सुनते थे कि अगर पानीपत की लड़ाई नहीं हुई होती तो क्या हुआ होता? बच्चे से पूछा गया तो बच्चे ने कहा कि हमारा हिस्ट्री का एक पाठ कम हो जाता। ये बहुत मार्मिक चुटकुला है। हमने ज्ञान में से जो आनन्द है उसको खत्म कर दिया है और जब हम सूचनाएं देते हैं तो हम कह भले ही देते हैं कि ज्ञान कोई संचित धन राशि नहीं है, कोई पोटली में बंधी हुई चीज नहीं है लेकिन व्यवहार में वही इस्तेमाल करते हैं कि हम पोटली में बंधा हुआ ज्ञान बांटते हैं- हां बच्चो नोट करो- इसने ये लिखा था, इसका लेखक यह था, फलानी लड़ाई तब हुई थी, ढिमाके ने फलाने को हराया था। भारत के चौथे प्रधानमंत्री ये थे, पांचवे राष्ट्रपति ये थे, महात्मा गांधी का जन्म तब हुआ था, महात्मा गांधी ने ये किया, उनकी माता का नाम ये था। बेचारे महात्मा गांधी होते तो सोचते कि मेरे कारण बच्चों को और ज्यादा पढ़ना पड़ गया। मैं नहीं होता तो यह पाठ घट जाता। मतलब महात्मा गांधी होते तो वाकई ऐसा ही सोचते क्योंकि वो बच्चों को इस तरह की शिक्षा देने के बिलकुल ही हिमायती नहीं थे। उसके लिए गांधी की बुनियादी तालीम को ठीक से जानना चाहिए। लेकिन हम लोग सूचनाओं को ज्ञान बना दे रहे हैं। और ऐसा करके पता है हम क्या कर रहे हैं? हम कालिदास की तरह उस पेड़ की डाली को काट रहे हैं जिस पर हम बैठे हुए हैं। ये बहुत बड़ा खतरा है और हम दुनिया के सबसे बड़े बेवकूफ साबित हो रहे हैं। ये समस्या अब धीरे-धीरे दिखने लग गई है। कम से कम बड़े शहरों के कॉलेजों में पढ़ाने वाले प्रोफेसर्स

को यह समस्या आने लग गई है। एक गूगल नाम की चीज है जो हर सवाल का जवाब दे देती है। बच्चा मोबाइल लेकर बैठता है कक्षा में और जो सवाल शिक्षक बोले, उसका जवाब उसके पास तैयार होता है और वो उससे आगे की चीज पूछता है जो शिक्षक को नहीं पता है। और शिक्षक खुद है जिसने ज्ञान का मतलब सूचना बना दिया है। इसलिए उसको सूचना नहीं पता होती है तो वह हक्का-बक्का रह जाता है और विद्यार्थी साबित कर देता है कि आपको तो कुछ नहीं आता। जबकि ऐसा है ही नहीं क्योंकि दुनिया का ऐसा कोई शिक्षक नहीं है जिसको सब कुछ आता हो। जो शिक्षक विद्यार्थी के सामने यह कह दे कि मुझे सब कुछ नहीं आता है, वही सबसे अच्छा शिक्षक है। लेकिन हम लोगों ने खुद ही यह साबित किया कि सूचना का मतलब ज्ञान है। हम ज्ञानी हैं क्योंकि हम तुमसे ज्यादा जानते हैं। तो जानने को तो जो चीज गूगल एक मिनिट में बता देता है, उसके लिए आपको क्यों रखेगी सरकार। भविष्य में गूगल ही पढ़ा दिया करेगा बच्चों को। ऑनलाईन क्लास चल जाएंगी। जो पढ़ना है पूछ लो, सिलेबस यह है, गूगल से पढ़ लो और नहीं तो लेक्चर चला देंगे। जिसमें हर चीज की सूचना मिल जाएगी। बच्चे सूचनाएं घोट लेंगे। घोट करके लाकर रख देंगे, खत्म। चलिए इसको छोड़िए, हम तो अभी उस तरह के आतंक का सामना नहीं कर रहे हैं ना, जैसा दिल्ली, मुम्बई के लेक्चरर्स कर रहे होंगे। उनका संकट है, हम पर तो अभी देर से आएगा। मतलब अगली दो-तीन पीढ़ी में आएगा। डायनोसोर मरे होंगे तो उनको थोड़े ही पता होगा कि वे मरने वाले हैं, लेकिन वो लुप्त हो गए क्योंकि वो बदलते समय के साथ अपने को नहीं ढाल पाए। यदि दो-चार पीढ़ी बाद यह शिक्षक नाम की संस्था डायनासोर की तरह खत्म हो भी जाए तो अपना टाइम तो निकल जाएगा। लेकिन आप सच बताइए, ईमानदारी से बताइये कि हम जो शहरों के नहीं छोटे कस्बों के शिक्षक हैं, हम लोगों के साथ भी यह नहीं होने लग गया है कि कक्षा में, रजिस्टर में लिखे हुए विद्यार्थियों की संख्या से बहुत कम संख्या होती है। यानी न आने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है और परीक्षा के अन्त में जब नम्बर आते हैं तो न आने वाले विद्यार्थियों के नम्बरों से ऐसा बिलकुल नहीं लगता कि जिनको हमने पढ़ाया था, उनको हमने कुछ ज्यादा पढ़ा दिया था। क्योंकि एक पासबुक नाम की चीज है और उसके अलग-अलग संस्करण होते हैं। वनवीक सीरीज होती है और वनवीक सीरीज का भी एक अगला संस्करण होता है, अगर आप वनवीक सीरीज खोल के देखें तो उसमें आखिरी के तीन पेज होते हैं, जिनमें लिखा होता है आखिरी एक घण्टे में पढ़ने के बिन्दु। और विद्यार्थी एक दिन में वही पढ़ लेते हैं और नम्बर भी ठीक-ठाक आ जाते हैं। चतुर विद्यार्थी ऐसा पता नहीं लगने देते कि वो पूरे साल नहीं पढ़े थे, क्योंकि वो वनवीक सीरीज पढ़कर उतने ही नम्बर ले आते हैं। तो देखा जाए तो हम लोगों ने अपने को, शिक्षक नाम की संस्था को अप्रासंगिक बना दिया है। सब जानते हैं, बस कोई कह नहीं रहा है। अगर मैं गलत नहीं कह रहा हूं, तो हमें इस पर विचार करना चाहिए।

हमें कहना होगा कि सूचना का नाम ज्ञान नहीं है। गूगल सब कुछ नहीं दे सकता। गूगल से ज्यादा बहुत कुछ है जो हमारे पास है, जो हम ही दे सकते हैं। जो शिक्षक ही विद्यार्थी को पहुंचा सकता है, जिसको कोई कम्प्यूटर नहीं दे सकता। पर क्या हममें खुदको लेकर यह विश्वास है? सरकार अगर उस तरह के प्रयोग करना चाहे कि कल को अगर मेरे सालभर के लेक्चर रिकॉर्ड कर ले और अगले साल मुझे कह दे कि अब आप घर बिराजिये क्योंकि आपके पूरे साल के लेक्चर हमारे पास हैं। पहले दिन क्या पढ़ना है वो यहां पर बाजे की तरह टी.वी. चला दे। मैं बोल रहा हूंगा और बाकी सब बच्चे सुन लेंगे। बल्कि और भी सुविधा होगी कि यहां तो आप मुझे एक ही बार सुन रहे हैं वहां आप चार-चार बार सुनेंगे। नहीं समझेंगे तो रिवाइंड कर कर के सुनेंगे। क्या हम दावे के साथ कह पाने की स्थिति में हैं कि हमारी जरूरत तो बनी रहेगी। शिक्षक को आप हटा नहीं सकते। इस पूरी शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी और पढ़ाई के बीच में शिक्षक नाम की अनिवार्य कड़ी को नहीं हटाया जा सकता। क्या हम यह दावा करने की स्थिति में हैं? यहां मानविकी की भूमिका आती है। मैंने यहां इतनी सारी भूमिका यही कहने के लिए बनाई कि यह जो मानविकी नाम का हमारा विषय है जो कोई अलग से एक विषय नहीं है, जिसमें साहित्य, कला, प्रदर्शन, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला से लेकर इतिहास भी शामिल किया जाता है क्योंकि अंततः इतिहास भी मानवीय संबंधों का अध्ययन है और इसमें शामिल किया जाता है दर्शन। तो ये जो सारे विषय हैं जो समाजविज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान से अलग हैं, ये वे विषय हैं जो यह साबित करेंगे कि शिक्षक नाम की इस अनिवार्य कड़ी को कभी भी बीच में से हटाया नहीं जा सकता।

दरअसल एक विज्ञान के शिक्षक के सामने यह खतरा हो सकता है हालाकि वहां भी नहीं होता है। उस पर विस्तार से चर्चा हो सकती है, उस पर चर्चा कम करूंगा। अभी हम मानविकी पर बात करेंगे। अगर हम राजनीति विज्ञान या स्कूली नाम नागरिक शास्त्र या और छोटी कक्षाओं में प्रचलित शब्द पर्यावरण अध्ययन को लें, इसकी किताबों को आप ध्यान से देखेंगे और मैं एक साल की बात नहीं कर रहा हूं, अगर आप पिछले 20-30 साल की किताबें देखेंगे या अपने बुजुर्गों से बात करेंगे तो वो आपसे यह कहेंगे कि जो चीजें हम लोग 9वीं, 10वीं में पढ़ते थे वो आजकल के बच्चे 5वीं-6वीं में ही पढ़ लेते हैं। सिलेबस इतना सिकुड़ता जा रहा है। ठीक इसी तरह साइंस में भी वे बताएंगे कि जो फराडे का नियम यहां पढ़ते थे वो यहां आ गया। वो कौनसी आवर्त सारणी थी, वो हमने तो इस कक्षा में पढ़ी और आजकल के बच्चे तो देखो तीसरी में ही पढ़ लेंते हैं। मतलब जो 10वीं का है वो 6वीं में और 7वीं का है वो 3वीं में और 3वीं का है वो पहली में। जैसा मैंने कहा ज्ञान का विस्फोट है बहुत सारी चीजें शामिल करनी हैं। तो हमने सिकोड़ करके बच्चों को ज्यादा-ज्यादा देना शुरू किया। यह परिघटना आपको समाज विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान में ज्यादा देखने को मिलेगी। मानविकी अपनी प्रकृति के कारण इससे थोड़ा-सा बची रहती है। साहित्य की अपनी विषय प्रकृति ऐसी है कि अगर ज्ञान बढ़ गया है या कवि साहित्यकार ज्यादा हो गये हैं तो आप क्या करेंगे? आप पुराने कवियों के साथ-साथ नये दो-चार कवियों की भी कविताएं डाल देंगे। लेकिन कविताओं की संख्याएं तो उतनी ही रहेंगी जितनी साल भर में पढ़ाई जा सकती हैं। तो पाठ्यक्रम थोड़ा नवीनीकृत हो जाएगा लेकिन उसका बोझ नहीं बढ़ेगा। कविता की किताब का बोझ नहीं बढ़ा। कविता की किताब उतनी ही रहेगी जितनी हुआ करती थी, बस यह है कि उसमें थोड़ा-सा अज्ञेय की जगह मंगलेश डबराल आ गये या और थोड़े नये कवि आ गए। थोड़े पुराने कवियों में एक-दो कम कर दिए और नये उसमें जोड़ दिए। लेकिन हमने उस किताब का बोझा नहीं बढ़ाया है और ऐसा कोई सोच-समझकर नहीं किया गया था, यह तो विषय की प्रकृति ही ऐसी है। यही बात प्रदर्शनकारी कलाओं के बारे में कही जा सकती है। हो सकता है संगीत कोई पढ़ रहा हो तो उसका पाठ्यक्रम थोड़ा बढ़ जाए कि अब संगीत में 15 की जगह 24 राग आ गये हैं। लेकिन वो तो एक ही सैद्धांतिक पेपर होगा, कुल मिलाकर संगीत सीखने वाले विद्यार्थी के लिए बोझे के रूप में विषय नहीं बढ़ेगा। तो हमारा विषय जो था दरअसल उसने मूल रूप से इस स्थापना को शुरू से ही खारिज किया कि जो ज्ञान होता है वो कोई पोटली में बंधी हुई चीज होता है। ज्ञान क्या है? ज्ञान है चीजों को देखने की नई-नई दृष्टियों का आविष्कार करना। मैं कृष्ण कुमार जी की परिभाषा से बात बढ़ाना चाहूंगा कि आप संसार के सभी पदार्थों को एक नाम देते हैं उस नाम से उनका एक संबंध जोड़ते हैं, हमारी भाषा यह काम करती है और उसके साथ जब आप कोई संबंध जोड़ते हैं तो संबंध में आपके पूर्व अनुभव काम आते हैं। इसलिए प्रत्येक शब्द या प्रत्येक वस्तु को आप एक प्रतीक के रूप में ग्रहण करते हैं। जब मैं कुर्सी बोलता हूं तो मेरे लिए कुर्सी शब्द का जो अर्थ है; प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके अपने जीवन की स्मृति और अनुभव के हिसाब से उसका एक अलग अर्थ है। कुर्सी शब्द से शायद बात इतनी स्पष्ट न हो लेकिन अगर हम किसी और शब्द की बात करें मसलन मैं बात करूं दरांती जो आपके खलिहान में काम आने वाला शब्द है उसे सुनकर के शायद मुझे उतनी स्फूर्ति नहीं होगी जितनी एक किसान के बच्चे को होगी क्योंकि वह शब्द उसकी स्मृतियों से जुड़ा हुआ है। तो हर शब्द को उसकी स्मृतियों के साथ ग्रहण करना सिखाना और उसके प्रतीकार्थ को ग्रहण करना और दूसरा अपने अगल-बगल के मनुष्यों के साथ एक संबंध बना पाना, पहचानना जैसे चीजों के साथ वैसे ही दूसरे स्तर पर मनुष्यों के साथ, यह सब शिक्षा के काम हुए - मानविकी इसलिए ही कहते हैं उसको और तीसरा चरण होता है उसके आगे वाला जिसमें मनुष्य-मनुष्य के भीतर झांकने की कोशिश करता है। पहला जानना और दूसरा उसके अंतरमन को जानना। ये जानने की कोशिश करना कि दूसरा मुझसे अलग क्या सोचता है या मैं जैसा सोचता हूं वैसा ही वो भी सोचता है या मुझसे कुछ अलग वो सोचता है या नहीं। अगर ये तीन चीजें हो जाती हैं तो उसके आधार पर चौथा चरण आता है और वो चौथा चरण ही है जिसके कारण मनुष्य नाम का यह जीव टिक पाया, ऐसा माना जाता है कि सृष्टि में रहने वाले अनेक जानवर हैं जो हमसे ज्यादा नजर रखते हैं, हमसे ज्यादा अच्छी गति रखते हैं, हमसे ज्यादा तेज चल सकते हैं, हमसे ज्यादा तेज कुछ भी काम कर सकते हैं। प्रत्येक चीज में हमसे तेज और हमसे आगे वाले बहुत सारे हैं उसके बावजूद मनुष्य ही यह क्यों कर पाया क्योंकि हम कार्यकारण के संबंध को संदर्भ के साथ जोड़ पाते हैं और वो उन दो चीजों के कारण संभव हो पाता है। वस्तुओं का नामकरण और उनके साथ अपने अनुभवों को जोड़ पाना। इन दो चीजों के कारण एक ऐसी

क्षमता विकसित हो पाती है जिसके कारण आप और हम या मनुष्य किसी घटना के पीछे कारणों को और उसके संभावित आगे के दूरगामी परिणामों का विश्लेषण कर पाने में संभव हो पाते हैं। और जब मैं यह कह रहा हूं कि मनुष्य यह विश्लेषण कर पाने में संभव होता है तो वो सिर्फ तात्कालिक परिणाम नहीं होते हैं, वो उसको पूरी समग्रता में देख पाने की क्षमता विकसित कर पाता है कि अगर हम दोनों के बीच आज झगड़ा हुआ तो इसका परिणाम कल किसी तीसरे पर भी पड़ सकता है। चौथी जगह पड़ सकता है। जैसे यह साइंस की एक बहुत मशहूर थ्योरी है कि एक तितली के उधर उड़ने से पांच हजार किलोमीटर दूसरी जगह भूकम्प आ जाता है ठीक इसी तरह मनुष्य के बारे में भी यह बात सत्य है। आज यहां मेरे बोलते समय, मेरे किसी व्यवहार के पीछे हो सकता है चार दिन पहले का मेरा मेरी पत्नी के साथ हुआ झगड़ा कारण हो। उसको वो जान जाएगा जो हम दोनों के संबंधों को जानता है जो उस संदर्भ को समझता है और मनुष्य के पास वो ताकत है। जो संदर्भ जानता हो वो इस तरह के सहसंबंध जोड़ना जानता है। इसके चलते ही हम इतिहास बना पाते हैं, इसके चलते ही हम भविष्य की एक रूपरेखा बना पाते हैं, इसके चलते ही हम सामाजिक नियम बना पाते हैं और यह चीज जो मैं बोल रहा हूं यह कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। दरअसल शिक्षक अपने विद्यार्थी को मानविकी यानी कविता पढ़ाते समय, कहानी पढ़ाते समय, इतिहास पढ़ाते समय, दर्शन पढ़ाते समय या कला सिखाते समय भी यह सब चीजे अपने-आप देता है। ये मानविकी की ही देन है।

अब मैं कुछ साहित्य की बातें करूंगा। मैं कक्षा में विद्यार्थियों से कभी भी ये वाक्य नहीं बोलता कि आज मैं आपको ये कविता पढ़ाऊंगा। बहुत छोटी-सी बात है लेकिन यह बहुत गहरी बात है। मैं हमेशा यह बोलता हूं कि आज हम ये कविता पढ़ेंगे। अगर किसी का ध्यान नहीं जाए तो ये दोनों बहुत सामान्य से वाक्य हैं। यह बात स्कूल के शिक्षक के बारे में मुझसे ज्यादा सही है यानी मुझसे भी ज्यादा यह बात आप पर लागू होती है कि कविता कोई कभी किसी को पढ़ाता नहीं है। कविता हमेशा साथ मिलकर पढ़ी जाती है। जैसे ही मैं आपसे यह कहता हूं कि मैं आपको यह कविता पढ़ाऊंगा वैसे ही मैं तीन बातों की हत्या कर देता हूं। पहली चीज, कविता में छिपे हुए आनन्द की हत्या हो जाती है। दूसरी चीज, साहित्य एक सहगामी प्रक्रिया है, इस सिद्धांत की हत्या करके हम वापस पोटली सिद्धांत की तरफ खड़े हो जाते हैं। क्योंकि पढ़ाऊं का मतलब यह कविता है, जिसका एक निश्चित अर्थ है और मैं आपको दूंगा। दूंगा कहते ही गड़बड़ है क्योंकि आपको तो उसके भीतर वो इच्छा पैदा करनी थी उस पार जाने की कि हां मुझे चलना है उस पार। यान का रूपक बहुत जबरदस्त है क्योंकि नाव दो लोग मिलकर चलाते हैं आम तौर पर। जब नाव लेकर दो लोग जाएंगे तो शिक्षक-विद्यार्थी चलाएंगे और दोनों जाएंगे साथ-साथ। शिक्षक विद्यार्थी के साथ जा रहा है। तो मैं आपके साथ यह कविता पढ़ रहा हूं या आइये हम ये कविता पढ़ते हैं। मैं आपको ये कविता पढ़ाऊंगा नहीं। क्योंकि कविता का एक निश्चित अर्थ है जैसे ही यह बात हम मानते हैं वैसे ही हम यह बात भूल जाते हैं कि कभी भी साहित्य का एक अर्थ नहीं होता है। साहित्य की, कविता की, कहानी की खासियत ही यह है कि वो अपने अन्दर अनेक अर्थ समेटे हुए है। एक कविता में कितने सारे अर्थ छुपे होते हैं, यह आपको नहीं पता और दुनिया में अभी तक कितने अर्थ खुलने बाकी हैं! और क्या पता वो चमत्कार उसी दिन हो जिस दिन आप पढ़ा रहे हों, उदाहरण के लिए आज 9 जनवरी को मैं कक्षा में पढ़ा रहा हूं तो मेरे मन के भीतर यह उत्साह होना चाहिए कि शायद 9 जनवरी वो शानदार दिन होने जा रहा है जब इस कविता का एक ऐसा नया अर्थ खुलेगा जो आज तक किसी ने सोचा ही नहीं था। क्योंकि दुनिया अपरमित संभावनाओं के कारण ही आगे बढ़ती है। जिस दिन संभावनाएं खत्म, उस दिन कुछ नहीं बचा। हर रचना के अनेक अर्थ होते हैं और हर विद्यार्थी के पास सोचने की शक्ति होती है और उसकी वो सोचने की शक्ति उसे उस कविता का अपना अर्थ ढूंढ़ने की प्रेरणा देती है और जब आप कविता पढ़ने को कह रहे हैं तो आप तीन तरह के शिक्षक हो सकते हैं, एक वो शिक्षक जो अपना अर्थ विद्यार्थी को दे दे, वो सबसे गड़बड़ हैं। दूसरा वो जो शिक्षक विद्यार्थी के साथ पढ़ते हुए एक नया अर्थ या उस अर्थ तक जो उसके दिमाग में है, उस तक पहुंचे लेकिन विद्यार्थी के साथ पहुंचे अकेले नहीं। यह पहले वाले शिक्षक से अच्छा हुआ। तीसरा जो शिक्षक विद्यार्थियों के बीच कविता को छोड़ दे और कहे कि ढूंढो इसका अर्थ। और नये-नये अर्थों को आने के रास्ते खोले। ये सबसे अच्छा शिक्षक है। ये चुनौती जो स्वीकार करता है कविता पढ़ाते समय कि मैं विद्यार्थी को कविता दे दूं और कहूं कि ढूंढो इसका अर्थ क्या हो सकता है। हो सकता है वो ही अर्थ निकले, हो सकता है 9 जनवरी कोई नया दिन नहीं हो। जो सामान्य अर्थ अभी

तक सब लोग पढ़ते आए थे वही विद्यार्थी भी ढूंढ लें लेकिन तब भी उसमें और जो मैंने एक अर्थ 'दिया', उन दोनों चीजों में अन्तर होगा। मैंने अर्थ दिया इसका मतलब यह होगा कि मैंने विद्यार्थी को दे दिया था और विद्यार्थी ने खुद वही अर्थ ढूंढ़ा, इसका मतलब उसने खुद पढ़कर अर्थ निकालना सीख लिया। आपने विद्यार्थी को साइकिल के कैरियर पर बिठाकर कहीं पहुंचाया नहीं बल्कि आपने विद्यार्थी को साइकिल चलाना सिखा दिया। आपने साइकिल पर बिठाकर पीछे से उसे धक्का दे दिया। जब तक विद्यार्थी खुद बिना किसी के सहारे के साइकिल नहीं चलाएगा और एक-आध बार घुटना नहीं छिलवाएगा तब तक साइकिल चलानी आएगी क्या? उसके पीछे उसका जो हाथ पकड़े रहते हैं न मां-बाप डर के मारे कि बच्चा मेरा गिर नहीं जाए, उनका बच्चा कभी साइकिल नहीं सीख सकता। जो समझदार मां-बाप हैं या बड़े भाई या दोस्त जो भी हैं वो अपने भाई या दोस्त को साइकिल चलाते समय धक्का देकर छोड़ देते हैं कि जा घुटना फुड़ा। एक-आध बार घुटना नहीं फुड़ा तब तक क्या साइकिल चलाई। तो अगर विद्यार्थी को आपने अर्थ कैसे ढूंढ़ते हैं कविता का यह सिखाया तो आपकी किताब तो आज खत्म हो जाएगी पर कल आपकी किताब के बाद भी विद्यार्थी कविता पढ़ना जारी रखेगा।

भारत में खासतौर से हिन्दी की दुर्दशा है कि हिन्दी में पाठक है ही नहीं। साहित्य की किताबें नहीं है घरों में पाठक बनना हमने खुद ने खत्म किया है। पाठक इसलिए खत्म हुए क्योंकि हिन्दी की कक्षाओं में शिक्षकों ने इतनी खराब ढंग से हिन्दी पढ़ाई, मैं आपको नहीं कह रहा हूं पूरी पीढ़ी को कह रहा हूं, मैं भी हिन्दी का शिक्षक हूं, आप में से बहुत सारे होंगे, सबको जोड़कर कह रहा हूं। एक नहीं पिछली चार पीढ़ियों से हम जो पढ़ाते आ रहे हैं, हम लोगों ने अपने विद्यार्थियों को और कुछ सिखाया या नहीं सिखाया हिन्दी से चिढ़ना सिखा दिया। जिसके सबसे ज्यादा नम्बर आते हैं कक्षा में हिन्दी में वो भी कोर्स पूरा होने के बाद कभी हिन्दी नहीं पढ़ता। पूछो तो कह देता है कि हां वो दसवीं तक थी मेरे पास उसके बाद तो कभी मैंने पढ़ी ही नहीं। होता है ना ऐसा कि बहुत अच्छा विद्यार्थी जो बाद में इंजीनियर बन गया, वैज्ञानिक बन गया आप उससे मिलते हैं आपका बहुत अच्छा विद्यार्थी था वो 8वीं, 9वीं, 10वीं में और वो कहता है सर तब तो था लेकिन बाद में मैंने कभी पढ़ी ही नहीं हिन्दी। होता है कि नहीं होता? हमारे देश में ऐसी त्रासदी है कि अच्छा विद्यार्थी है तो उसको साइंस की तरफ ही जाना है। चलिए ठीक है, वो जो भी बनना था बन गया, साइंटिस्ट बनना था बन गया, डॉक्टर बनना था बन गया लेकिन हिन्दी का अच्छा विद्यार्थी तो वो बिना अपने प्रोफेशन की मजबूरी के भी बना रह सकता था न। अगर आप अच्छे शिक्षक थे तो आपका विद्यार्थी होने के नाते उसको आपकी कक्षा से निकलने के बाद या बीए, एमए, बीएससी या एमएससी या बीटेक, एमटेक या जो भी उसको करना था करने के बाद या नौकरी करते हुए, गृहस्थी चलाते हुए उसको यह तो रखना चाहिए था कि जैसे हम टीवी पर रोज न्यूज देख ही लेते हैं ऐसे महीने में एक किताब हिन्दी की कोई कविता, कहानी, उपन्यास ही खरीद लूं। नया क्या आ रहा है, जान ही लूं। ऐसे कितने परिवार हैं, जो हिंदी के पठन पाठन से जुड़े नहीं हैं और फिर भी जिनके घरों में हिंदी की सामयिक किताबें मिलती हैं? हिन्दी के अलावा और भारतीय भाषाओं में इतनी बुरी स्थिति नहीं है। थोड़ा बुरा लगता है यह सुनना लेकिन मराठी परिवारों में आप जाइए, मराठी का नया उपन्यास उनके घर में मिल जाएगा। बंगालियों के घरों में आपको रविन्द्रनाथ टैगोर का साहित्य मिल जाएगा, हमारे घरों में क्या प्रेमचन्द सबके घरों में है? नहीं है। लेकिन उनके घरों में रविन्द्रनाथ टैगोर जरूर होते हैं। सिर्फ रविन्द्रनाथ टैगोर ही नहीं नए साहित्यकारों की किताबें भी रुचि से रखी हुई मिल जाएंगी। हम हिन्दी में यह बना ही नहीं पाए। क्योंकि हम लोगों ने हमेशा कक्षा में हिन्दी की घण्टी जो थी, उसमें बच्चे को यह सिखाया कि हर पाठ का एक निश्चित अर्थ होता है, उसको रट कर के उगलना सिखाया।

हम लोगों ने अपनी कक्षा में अनिवार्य रूप से एक सवाल पूछना जारी रखा और यह सवाल हम हर कहानी के बाद पूछते हैं ''बच्चो! इस कहानी से हमें क्या शिक्षा मिलती है।'' यह दुनिया का सबसे खराब सवाल है। यानी बच्चा कहानी पढ़ने से पहले ही यह बात जानता है कि मुझे इसमें से एक शिक्षा ढूंढ़ कर निकालनी है। लेकिन क्या आप लोग फिल्म देखने जाते हैं तो यह सोचकर जाते हैं क्या कि इस फिल्म से मुझे क्या शिक्षा मिलने वाली है। फिल्म क्या है? फिल्म भी तो रचना का एक माध्यम ही है, एक प्रकार की कहानी ही है। तो फिर हिन्दी भाषी प्रान्तों में कहानी की किताबें

बिकना क्यों बन्द हो गई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, उत्तर प्रदेश इन जगहों पर हिन्दी की किताबें क्यों नहीं पढ़ते लोग? सिनेमा हॉल में अगर लोग 250 रुपये का टिकिट लेकर के जा सकते हैं तो 75 रुपये की पेपर बैक राजकमल की किताबें क्यों नहीं खरीद सकते? इसलिए नहीं खरीद सकते हैं क्योंकि बचपन से हमें सिखाया था कि कहानी क्यों पढ़ी जाती है- 'शिक्षा'। बच्चो! इससे हमें क्या शिक्षा मिलती है? दरअसल जब हम पूछते हैं तो हम बच्चे को यह सिखा देते हैं कि जो भी सवाल, जो भी कहानी वो पढ़ रहा है वो दरअसल एक नैतिक शिक्षा का रास्ता भर है, एक सीढ़ी भर है तो दरअसल हम कहने को तो हिन्दी की कक्षा पढ़ा रहे हैं असल में हम नैतिक शिक्षा वाला घण्टा ही दोबारा चला रहे हैं कि इससे कुछ सीख लो। ठीक है सीखना चाहिए, मैं यह नहीं कह रहा। हर घटना, हर चीज से कुछ सीखता है आदमी दुनिया में, कौनसी चीज है जिससे नहीं सीखता है। ठोकर लग जाती है तो जानता है कि अगली बार कैसे चलना है। ठोकर भी सिखाती हैं लेकिन हिन्दी की कक्षा में एक चीज थी जो महत्वपूर्ण थी जो किसी और कक्षा के पास नहीं थी। वो था आनन्द, मजा, रस। वो हमने खुद ने खो दिया, जबकि हमारे ही पास ऐसा था कि साइंस के टीचर हमसे ईर्ष्या करते कि यार तुम्हारी कक्षा अच्छी है। बच्चा कहानी की कहानी पढ़ रहा है और पढ़ाई की पढ़ाई हो रही है। मैं बच्चों से पूछता हूं, (अक्सर जो भी नई फिल्म लगी होती है, उसका नाम ले लेता हूं) कि बताओ शोले अगर तुम्हारे कोर्स में लग जाएगी तो मजा आएगा, बच्चे बड़े खुश हो जाते हैं। मैं कहता हूं नहीं होगा। अगर शोले कोर्स में लग जाएगी तो तुम शोले देखोगे ही नहीं। तुम्हें पकड़ कर बिठाया जाएगा कि देख लो तब भी तुम नहीं देखोगे। क्योंकि उससे आनन्द निकाल देंगे हम लोग। मैं मानता हूं कि कई बार शिक्षक चाहे तो भी बहुत सारे प्रयोग नहीं कर सकता है लेकिन कुछ प्रयोग तो व्यक्तिगत स्तर पर शुरू किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए कहानी, कविता पढ़ाने और सिखाने से ज्यादा मिल कर पढ़ने की चीज है। मैं जो कह रहा हूं यह सिद्धांत की बात है। इसे कोई शिक्षक कोशिश करे तो व्यवहार में अपना सकता है लेकिन अमूमन कोई नहीं करता। हमको इससे बड़ी पीड़ा होती है कि किसी को पढ़ाई में आनन्द आए। मूलतः हम लोग आनन्द देखकर चिढ़ने वाले लोग हैं। हम लोग उसको यह समझा देते हैं कि बेटा कहानी पढ़ ले लेकिन कहानी तेरा एक पाठ है। तो बच्चा भी कहानी को पाठ की तरह पढ़ने लगता हैं और इसीलिए जब 10वीं के बाद हिन्दी छूटी उसके बाद पलट कर कभी पढ़ता ही नहीं है हिन्दी। हमने वो आनन्द उसके भीतर से निकाल दिया, जिससे कि वो उस आनन्द को महसूस कर पाता। वो आनन्द तब ही था जब उसका अर्थ वो खुद ढूंढ़ निकालता। हम उसको अर्थ दे नहीं देते और वो तब था जब उससे सिर्फ यह नहीं पूछते कि इससे क्या शिक्षा मिलती है।

दूसरा, हम जितनी कहानियां बच्चों को सुनाते हैं (और यहां सिर्फ सिलेबस की ही बात नहीं है। सिलेबस के अलावा भी कहानियों का बहुत उपयोग होता है। कक्षा में अनेकों उदाहरणों के लिए सुनाई जाती हैं, असेम्बली में सुनाई जाती हैं, प्रेयर के बाद सुनाई जाती हैं, कहानियों का हमारी कक्षाओं के साथ, हमारे शिक्षक जीवन के साथ अनिवार्य हिस्सा है।) हम जो कहानियां सुनाते हैं उनमें हम किसी आदर्श को उनके सामने रखते हैं, किसी महान आदमी की कहानी सुनाते हैं, जिसमें बचपन से ही महानता के लक्षण थे। अगर किसी के बचपन की कहानी सुनाते भी हैं तो उसी आदमी की सुनाते हैं जो बड़ा होकर महान बना। या अगर किसी बच्चे की कहानी सुनाते हैं तो ऐसे बच्चे की कहानी सुनाते हैं जिसने अपने बचपन में ही कुछ विलक्षण कारनामे कर दिखाये थे। ये तीनों चीजें बच्चों को प्रेरणा देने के लिए बहुत अच्छी हैं लेकिन ऐसा करते हुए हम कुछ बहुत बड़ी गड़बड़ कर देते हैं। बचपन जो है वो बड़े होने की रिहर्सल नहीं होती है, बड़े होने की पूर्व पीठिका नहीं है बचपन। बचपन अपने-आप में पूरा बचपन होता है लेकिन हमारी सारी जो कहानियां हमने सुनाई हैं वो सुनाते हुए कहीं न कहीं बच्चे को हम यह संदेश दे रहे होते हैं जो वो ग्रहण कर रहा होता है कि मुझे जल्दी से बड़े हो जाना है और बड़े होकर बहुत महान काम करने हैं। यानि बचपन जो है खाली इंतजार है बड़े होने का। हो सकता है कि अब 25, 30, 40 साल की उम्र में हम को यह लगता हो कि बचपन तो खाली रिहर्सल थी ये बड़े होने की, असली काम तो ये है लेकिन बच्चे के सामने कभी ऐसा मत कहिये कि तेरा बचपन तो खाली एक रस्ता है, बच्चे के लिए वह पूरा गंतव्य है। उसके सामने हम कभी उसका महत्व बनने ही नहीं देते। अपनी तमाम कहानियों में, तमाम किस्सों में, तमाम प्रेरक कथाओं में इतिहास के प्रसंगों में जो भी उसके सामने कहानी और इतिहास का हिस्सा रखते हैं, उसके साथ उसके मन में और यह विश्वास गहरा होता है कि मैं जल्दी बड़ा कब होऊंगा। और

ऐसे कितने ही बच्चे है। और आप खुद सोचिये बचपन में हमको भी ऐसा लगता था कि मैं कब बड़ा होऊंगा। और बड़े होने के बाद हम यह कहते हैं कि काश हम बच्चे ही रहते। यानी दोनों ही तरफ गड़बड़ है। जब हम बच्चे थे तो हम बच्चा होकर खुश नहीं थे और अब बड़े हैं तो बड़े होकर खुश नहीं हैं। यानी जो जिस उम्र में था, उसको उस उम्र में पूरा जीने का अवसर मिला ही नहीं। हम सबने अपना थोड़ा-थोड़ा बचपन खोया है। तैयारियों में, पढ़ाई में, ये में, वो में, बड़ा-बड़ा बोझा उठाने में। पानीपत की लड़ाई बढ़ गई इसलिए पाठ बढ़ गया वगैरह-वगैरह और कहीं न कहीं हम सबके भीतर एक दुष्ट आदमी भी है वो यह कहता है कि जो मुझे नहीं मिला वो तुझे कैसे मिल गया है। चूंकि हमने भी थोड़ा-थोड़ा बचपन खोया था, इसलिए हम बच्चे के सामने हमेशा यह जताने की कोशिश करते हैं कि बेटा तुम्हें बड़ा होकर ये बनना है। पाठ्यक्रम में जो कहानियां छपी हुई हैं, मानता हूं वो आपके हाथ में नहीं हैं लेकिन मैं फिर कह रहा हूं कि कहानियों का हमारी पढ़ाई के साथ बहुत अनिवार्य हिस्सा है। हम अपनी कक्षाओं में अनेकों मौकों पर अनेक कहानियां सुनाते हैं। हम जिन कहानियों का चुनाव करते हैं उनमें बच्चे के वर्तमान का उल्लास और उत्सव कितनी बार होता है क्योंकि उसके लिए तो वही मायने रखता है लेकिन हमारी कहानियों में वो नहीं होता है। वो छूट जाता है और या फिर ऐसे विलक्षण बच्चे की गाथा होती है, जिसने बचपन में ही बहादुरी के कारनामे दिखाये थे और जिसे वीरता का पुरस्कार मिला था। अब सब बच्चे वीर थोड़े ही हैं या वीर हैं तो सब बच्चों को मौके थोड़े ही मिले हैं कि उनका साथी बच्चा नदी में डूब रहा था और उन्होंने कूद के निकाल लिया। तो क्या मेरे को बहादुर होने के लिए इसकी कामना करनी चाहिए कि काश मेरा दोस्त एक बार डूबे और मैं उसको बचा लूं। जिस बच्चे को बहादुरी दिखाने का मौका नहीं मिला वो भी बहुत अच्छा, सच्चा, नेक और बहादुर बच्चा होगा ना। जो आम बच्चे हैं जो हमारी कक्षाओं में बैठे हैं, उनके पास ऐसे बहुत छोटे-छोटे काम हैं न जिनकी तारीफें की जा सकती हैं। सच बोलना, साफ-सुथरा रहना, टाइम पर आना, आदर करना, आदि या सच बोलने से भी ज्यादा अच्छा उदाहरण होगा झूठ बोलने के बाद भी उसको स्वीकार कर लेना। एक ऐसा उदाहरण होगा जिसके साथ हर बच्चा अपने-आपको जोड़ पाएगा। मैं फिर कह रहा हूं कि जैसे ही आप आदर्श रखने की कोशिश करते हैं वैसे ही आप बच्चों को थोड़ा-सा विमुख कर देते हैं अपने से।

आदर्श बहुत अच्छी चीज है लेकिन आदर्शों के साथ थोड़ी गड़बड़ होती है। गौतम बुद्ध के बारे में एक किंवंदती है जो मैं सुना रहा हूं। उनके पिता को भविष्यवाणी की एक व्यक्ति ने कि आपका बेटा या तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा या बहुत बड़ा संन्यासी बनेगा तो राजा शुद्धोधन ने यह तय किया कि मेरा बेटा चक्रवर्ती सम्राट ही बने और सन्यासी न बने इसके लिए बचपन से ही उसको सन्यास की ओर आकर्षित होने वाली तमाम संभावनाओं से दूर करके रखा जाए। सिद्धार्थ को कोई बूढ़ा न देखने को मिले, कोई रोगी न देखने को मिले, कोई मृतक न देखने को मिले मतलब हमेशा हंसते-मुस्कुराते स्वस्थ खिलखिलाते लोग ही उसके चारों और रहें और उसको जिंदगी का ऐसा शानदार वाला रूप देखने को मिले कि उसको दुःख क्या होता है, कभी पता ही नहीं चले। अगर उसे दुःख क्या होता है पता ही नहीं चलेगा तो वो सन्यासी क्यों होगा। आगे की कहानी तो आप सब जानते ही हैं, जब सिद्धार्थ ने पिता की बनायी सरहद को लांघा तो एक रोगी, एक बूढ़ा और एक मृतक देखने के बाद ऐसा वैराग्य हुआ कि सिद्धार्थ रातों-रातों अपनी पत्नी को छोड़कर के चले गये। वो एक अलग बहस का मुद्दा है कि अपनी पत्नी को छोड़कर उन्होंने कितनी बड़ी गलती की थी। मैं सिर्फ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बताने की कोशिश कर रहा था कि आदर्श-आदर्श और अचानक एक दिन यथार्थ सामने आये तो क्या होता है। अभी थोड़ी देर पहले हम बेहार साहब के साथ बात कर रहे थे। तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का जिक्र आया था। तो मुझे एक और शानदार उदाहरण याद आ रहा है 'अनामदास का पोथा'। 'अनामदास का पोथा' हजारीप्रसाद द्विवेदी का बहुत शानदार उपन्यास है, रैक्व ऋषि के बारे में है। छान्दोग्य उपनिषद में रैक्व व्याख्यान है। उस रैक्व व्याख्यान को लेकर पूरा उपन्यास लिख दिया है द्विवेदी जी ने। क्या मामला है थोड़ा सुन लीजिए किस्सा बड़ा मजेदार है। रैक्व के बारे में भी कुछ-कुछ ऐसा ही था। रैक्व के पिता चाहते थे कि रैक्व सन्यासी बने। शुद्धोधन चाहते थे कि सिद्धार्थ सन्यासी न बने और चक्रवर्ती सम्राट बने लेकिन रैक्व के पिता चाहते थे कि रैक्व एक बड़े सन्यासी बने तपस्वी बने यानी दुनिया के सबसे महान तपस्वी बनें। इसीलिए रैक्व के पिता ने ये सोचा कि सन्यास में बाधा डालने वाली चीजें क्या होती है यहां मैं जो बात बोलने जा रहा हूं वो उन लोगों की क्या मानसिकता थी यह बताने के लिए बोल रहा हूं, मैं ऐसा नहीं मानता हूं। सन्यास में बाधा डालती है स्त्री। ये एक

पारम्परिक सोच रही है कि गौतम यशोधरा को छोड़कर गये तब बने ऋषि। हालांकि बाद में मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा लिखकर गौतम बुद्ध को कठघरे में खड़ा कर ही दिया था ये अलग बात है लेकिन हमारी पारम्परिक सोच तो यही है कि स्त्री होगी तो व्यक्ति तपस्या से भटकेगा और ये हमारी कहानियों में आता है। रम्भा को भेज दिया और उर्वशी को भेज दिया और मेनका को भेज दिया और बड़े-बड़े सन्यासी डिग गए। तो रैक्व के पिता ने उनको बचपन में इस तरह से पाला कि उनके जीवन में कभी कोई स्त्री नहीं आए। स्त्री नाम के जीव का उनको ज्ञान ही न हो। यानी उनको पता ही नहीं चले कि दुनिया में दो लिंग होते हैं उनमें स्त्रियां भी होती है। उनके सामने सिर्फ पुरुष ही रहें चारों ओर तो आकर्षण नहीं होगा और आकर्षण नहीं होगा तो भटकाव नहीं होगा और भटकाव नहीं होगा तो दुनिया के सबसे बड़े तपस्वी बन जाएंगे। लेकिन उस कहानी में भी एक दिन मोड़ आया कि राजा की गाड़ी उस मार्ग से निकल रही थी जहां इनका आश्रम था और गाड़ी का पहिया अटक गया और राजकुमारी जो आमतौर पर नीचे उतरती नहीं हैं लेकिन वो उतर कर घूमने लगी तब रैक्व वहां से गुजर रहे थे। रैक्व टकरा गए, उन्होंने कहा कि ये पहिया निकालने में थोड़ी मदद कर दीजिए। अब रैक्व की जो प्रतिक्रिया होती है बड़ी जबरदस्त होती है। रैक्व तो जानते ही नहीं थे कि स्त्री भी कोई प्राणी होता है। ये कौन तपस्वी कुमार है? इनके तो दाढ़ी मूंछ भी नहीं है। इनकी देह भी कुछ अलग तरह की है और इनको देखकर मेरे मन में कुछ-कुछ हो रहा है। जो कभी और किसी को देखकर नहीं होता था। यानी वो उस आकर्षण को कुछ नाम नहीं दे पा रहे थे। लेकिन उनको पहली बार कुछ ऐसा महसूस हुआ जो आज तक किसी तपस्वी कुमार को देखकर नहीं महसूस हुआ था और फिर वो धक्का देकर निकाल तो देते हैं लेकिन जिस पीठ से धक्का दिया था न उसमें खुजली रह जाती है उनके। राजकुमारी उनसे बहुत प्रभावित हो जाती है, भेजकर के दूत उनको वहां बुलाती है। और क्योंकि उनमें व्यवहारिक ज्ञान कुछ नहीं था, सैद्धांतिक ज्ञान अपरम्पार था तो वहां जाकर के वो बड़े पण्डितों से शास्त्रार्थ करते हैं, प्रशंसा पाते हैं लेकिन वो खुद ये समझ पाते हैं कि सिद्धांत और व्यवहार में अन्तर कितना ज्यादा है और वो उस व्यावहारिक ज्ञान जो उन्होंने कभी नहीं पाया था उसकी कमी पहली बार महसूस करते हैं। फिर वो पढ़ना-लिखना छोड़कर करके गाड़ी चलाने लग जाते हैं, वो आगे की कहानी है।

बालक को कठोर यथार्थ से 'बचाकर' रखने का प्रयास- मैं इसको रैक्व ग्रंथि कहता हूं। जो हम शिक्षक विद्यार्थियों के साथ हमेशा करते है और यह काम सबसे ज्यादा साहित्य और इतिहास का शिक्षक ही करता है जो दोनों मानविकी के अंतर्गत आते हैं। कहानियां दोनों में होती हैं क्योंकि इतिहास में भी कहानियां होती हैं और साहित्य में भी कहानियां होती हैं और इतिहास की कहानियां सच्ची हों यह जरूरी नहीं है। इतिहास मूलतः क्या है? एक इतिहासकार की नजर से देखा हुआ अतीत है। लोग अपने-अपने तरह से इतिहास को देखते हैं तो मैं यह कह रहा था कि हम जब बच्चों को इतिहास या कहानियां या दोनों जब पढ़ाते हैं तो हम हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि बच्चों को कुछ आदर्श से हटकर के यथार्थ न पता लग जाए। हम उन्हें बचाने की कोशिश करते हैं, समाज की कड़वी सच्चाईयों से और ये जो मैं बात कह रहा हूं यह मेरी नितांत व्यक्तिगत सोच है आप इससे असहमति रख सकते हैं, मुझसे लड़ सकते हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से इसको रैक्व ग्रंथि मानता हूं कि बच्चे को बचाकर रखना है। कुछ उसको गड़बड़ पता न लग जाए। जब उसको पता लगता है तो उसको लगता है कि मेरे साथ धोखा किया है आपने और उस दिन वह समझता है। तो आप बच्चे को सिखाते रहे, सिखाते रहें कि चोरी करना बुरी बात है। आप समझते हैं कि हमारे दौर के बच्चे इतने बेवकूफ हैं कि वो नहीं जानते हैं कि दुनिया में चोरी करने वाले, भ्रष्टाचार करने वाले, घोटाले करने वाले कितने सफल हो रहे हैं? अपने बच्चों को हमसे बेहतर कौन जानता है। आपके हिसाब से वो इतने सीधे और इतने भोले हैं? नहीं हैं न। तो हम कुल मिलाकर बच्चे को यह शुरू से ही सिखाते हैं कि तुम बहुत कुछ जानते हो, लेकिन फिर भी हम यह मानते हैं कि तुम कुछ नहीं जानते हो और हम वो सब कुछ नहीं बताएंगे जो तुमको नहीं जानना चाहिए। लेकिन हमको पता है कि तुम अलग से वो सब कुछ जानते हो। इसीलिए हमारी तमाम कहानियां आदर्शों से भरी रहती हैं, उपदेशों से भरी रहती हैं। वो तमाम कहानियां जिनके अन्दर हम कहानी के अंत में उपदेश का छौंक जरूर लगाते हैं। हम उपदेश के बिना कोई कहानी सुनाते ही नहीं हैं। हम यह भूल गए कि कहानियां हंसने के लिए होती हैं, कहानियां आनन्द लेने के लिए होती हैं, कहानियां रस लेने के लिए भी होती हैं लेकिन हम बिना उपदेश के उन्हें चीजें नहीं देते हैं और इसके कारण बच्चे के लिए हिन्दी की घण्टी एक बोरिंग, टीचर जो बताए उसको सुन लेने का, रट लेने का अगले दिन या

परीक्षा में उसको वैसा का वैसा उगल देने का माध्यम भर रह जाती है। और इसीलिए हिन्दी की कक्षा का सबसे ज्यादा नम्बर लाने वाला विद्यार्थी बाद में आगे हिन्दी न तो लेता है और न पढ़ता है। और हिन्दी के जो बड़े लेखक हैं आज के उनसे पूछकर देखिए क्या उनके 7वीं-8वीं, 5वीं-6वीं कक्षा में हिन्दी में बहुत अच्छे नम्बर आये थे। मेरा दावा है नहीं आए होंगे। वो आम विद्यार्थी ही रहे होंगे। ऐसा नहीं हुआ कि हिन्दी के अच्छे विद्यार्थी जो थे, वो आगे जाकर हिन्दी के अच्छे लेखक तो छोड़िए अच्छे पाठक भी बने हों। हम उनको पाठकों में भी तब्दील नहीं कर पाए। जब हम एक लाख पाठक बनाएंगे तब कहीं एक अच्छा लेखक उनमें से निकलेगा। लेखक सीधे नहीं बनता। लेखक तब बनता है जब बहुत सारे पाठक होते हैं। उन बहुत सारे पाठकों में बहुत सारे लोग लिखने की कोशिश करते हैं और जब एक लाख लोग साधारण कहानियां या सामान्य कहानियां लिखते हैं तब उन्हीं के बीच में से एक प्रेमचन्द निकलता है। यह बात हमारे दौर के एक बड़े कहानीकार स्वयं प्रकाश ने कही थी कि हमें एक लाख फालतू कहानियां लिखने वाले लोग चाहिए। क्योंकि अगर वो नहीं होगा तो एक अच्छा कहानीकार भी नहीं निकलेगा उनके भीतर से। तो होना यह चाहिए कि ढेर-ढेर सारी कहानियां लिखी जाएं। लोग अपने अनुभवों पर कहानियां लिखें। स्त्रियां अपने अनुभवों पर कहानियां लिखें। यह सोचना छोड़ दें कि उनका अनुभव सीमित है। उनका जो अनुभव है वो उनका विशिष्ट अनुभव है जो और किसी के पास नहीं है। हरेक के पास अपना अनुभव होता है कहने के लिए। हरेक के पास अपनी कहानी होती है, बस हम संकोच में रहते हैं। वो हममें से ही आएंगे या हम ही अपने विद्यार्थियों को इस तरह से बनाएंगे कि वो इस तरह निकलें। तब ये भाषा बचती है, तब ये भाषा आगे बढ़ती है लेकिन अफसोस हम लोग ऐसा नहीं कर रहे हैं।

जब मैं यह कह रहा था कि कविता के बहुल पाठ संभव होते हैं, अनेक अर्थ संभव होते हैं तो उसके अन्दर यह बात भी शामिल है कि अगर एक कविता के अनेक अर्थ हो सकते हैं तो फिर एक व्यक्ति की सोच अंतिम सोच नहीं हो सकती है। ये ज्ञान उसको विज्ञान की कक्षा में या नागरिक शास्त्र/पर्यावरण अध्ययन की कक्षा में बहुत काम आएगा। दिया मानविकी के शिक्षक ने लेकिन ये ज्ञान उसको काम आएगा साइंस की कक्षा में। कैसे? ये मैं आगे बताने की कोशिश करता हूं। फिलहाल एक और चीज की बात करें जो हम दे सकते हैं वो होता है बच्चे को उसकी कल्पना का इस्तेमाल करने की छूट देना। बच्चे को अपनी कहानियां बनाने के लिए, अपनी कविताएं लिखने के लिए प्रेरित करना। बच्चे को उत्तर में 'इससे हमें क्या शिक्षा मिली' पूछने के बजाय 'अगर तुम इसकी जगह होते तो क्या करते' टाइप के सवाल ज्यादा पूछना। हम सवाल कैसे बनाते हैं? हम ऐसे सवाल बनाते हैं जिसका एक ही उत्तर हो। चूंकि परीक्षा में हम वही उत्तर चौक करके तय करेंगे कि जो मानक उत्तर के सबसे नजदीक है उसको ज्यादा नम्बर देंगे। लेकिन ऐसा करके ही हम लोग उन कुंजी और पासबुक लेखकों की किताबें ज्यादा बिकवाते हैं। क्योंकि हमने सारे सवाल ऐसे बनाये हैं जिनका एक निश्चित उत्तर है। तो वो तो उस कुंजी वाले ने छाप दिया है कि इस सवाल का ये उत्तर है। क्या हम ऐसे सवाल नहीं बना सकते हैं जिसका प्रत्येक विद्यार्थी अपनी दृष्टि से अलग उत्तर दे सके। अगर हम ऐसा सवाल बना सकते हैं तो कुंजी वालों का व्यापार एकदम ठप्प हो जाएगा। वो हमको गालियां देंगे, उनकी गालियां यदि लग गई तो काफी नुकसान भी होगा। लेकिन कुल मिलाकर शिक्षा का इससे बहुत फायदा होगा कि हम सवालों को 'क्या', 'कब', 'कौन' और 'किसने' इन से हटाकर 'कैसे', 'क्यों' और 'यदि' पर ला पाएं। पहले चार सवाल जो मैंने बोले थे उनके उत्तर वस्तुनिष्ठ होते हैं। वस्तुनिष्ठ मतलब एक ही उत्तर, जैसे महात्मा गांधी कब पैदा हुए का एक ही उत्तर है लेकिन महात्मा गांधी के अहिंसा के सिद्धांत के बारे में राय मांगी जाए तो वो हरेक की अलग-अलग हो सकती है। हालांकि हमने विद्यार्थी को यह छूट नहीं दी है कि वो उसकी बुराई भी कर सके। लेकिन देनी चाहिए। सिद्धांत तो यह कहता है कि दुनिया के हर व्यक्ति और हर सिद्धांत के बारे में विद्यार्थी से सवाल पूछते समय उसे पूरी छूट दी जाए। उसको उसके बारे में जैसा लगता है वो कह सके। कम से कम साहित्य में हमेशा इस बात की गुंजाइश है कि हम एक कविता के अनेक अर्थों को सही मान सकें। अगर हम ये मानते हैं कि एक कविता के अनेक अर्थ हो सकते हैं तो बच्चे ने जो अर्थ लिखा है वो गलत नहीं है। आपको देखना होगा कि उसने वो अर्थ किस तरह से लिखा, उसकी शैली कैसी थी, वो अपनी बात संप्रेषित कर पाया या नहीं कर पाया। बजाय इसके कि उसने गलत लिखा या सही। मैं फिर से कह रहा हूं, गलत सही कुछ नहीं है। मेरे भान्जे की कहानी में ट्रक उड़ने लग गया था एक दिन। अब न तो कभी उसने ट्रक उड़ते देखा न ऐसी कोई संभावना है। उसने ट्रक को कैसे उड़ाया, मैं आज तक सोचता हूं। लेकिन

उसकी कहानी में ट्रक उड़ जाता है। एक तरीका तो यह हो सकता है कि बच्चे को डांटकर कहा जाए कि ट्रक भी उड़ता है क्या, हट बावले! जैसे ही हमने यह कहा कि 'हट ट्रक भी उड़ता है क्या बावले!' वैसे ही हमने उसको सिखा दिया कि कल्पना नहीं करनी है। जबकि अनदेखे अनजान की कल्पना न की जा सके तो दुनिया में आविष्कार हो ही नहीं सकते। दुनिया आगे बढ़ ही नहीं सकती। आज से कुछ सौ साल पहले कोई ये नहीं सोच सकता था कि मनुष्य उड़ सकता है, आज से कुछ सौ साल पहले हम यह नहीं सोच सकते थे कि हम कहीं से कहीं बैठे हुए एक दूसरे से बात कर सकते थे और ये तो कोई सोच ही नहीं सकता था कि बिलकुल आमने सामने जैसे देख रहे हो, ऐसे कर सकते हैं लेकिन अब हम लाइव चौट करते हैं ये करते हैं वो करते हैं। तो ये सब चीजें जब नहीं हुई थीं तो किसी ने तो ऐसी कल्पना की थी ना। कल्पना को जीवन से निकाल देना, इसमें सबसे ज्यादा नुकसान मानविकी का नहीं है। इसमें नुकसान दूसरा है और वो हैं लोकतंत्र, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता- इन सबका सीधा ताल्लुक हिन्दी की उन कहानियों से है, जिसमें बच्चा अजीबोगरीब कल्पनाएं करता है। हमारे देश में विभिन्न समुदायों के बीच में आज की तारीख में इतना ज्यादा अपरिचय बढ़ता जा रहा है कि मेरे राज्य में एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को जीवित जला दिया, उसका वीडियो बनाकर फैलाया और हम देखते रहे और हम थरथराये नहीं, हम शर्म से गड़ नहीं गए। हमें यह नहीं लगा कि ये हमने कौनसा समाज बना दिया है। वो कहीं से तो बन के निकला होगा। इसी दुनिया में बड़ा हुआ होगा। उसके खून के दाग हममें से हरेक की कमीज पर है। मतलब थोड़े-थोड़े अपराधी हम सब हैं, वो एक आदमी नहीं है। इसके पीछे हमने जो बच्चों को अपरिचित और अनजान के प्रति अविश्वास पैदा करना सिखाया, वह जिम्मेदार है। आज अपरिचय के दायरे तो बहुत ज्यादा हैं ही विभिन्न समुदायों के बीच में, लेकिन उससे ज्यादा ये शक और अविश्वास है। अगर आप समझ पायें तो इसका ताल्लुक कहीं न कहीं उस साहित्य की कक्षा से है। आज की तारीख में व्हाट्सएप पर अनाप-शनाप जहरीले-जहरीले मैसेज आते हैं आप कहिये कि जरा वाट्सअप इतिहास लेखन को थोड़ी देर के लिए अलग रखो और मुझे बताओ कि मुसलमानों से सबसे बड़ी दिक्कत क्या है? उत्तर मिलेगा वो चार शादियां करते हैं, पूछिए आपने देखा क्या, नहीं लेकिन होता है। गन्दे रहते हैं, अरे थोड़ा बताइये आपने कहां देखा। नहीं देखा लेकिन होता है क्योंकि वाट्सअप पर पढ़ा था। हो सकता है कि जो राजस्थान में बैठकर पढ़ रहा है उससे कहा जा रहा हो कि ऐसा छत्तीसगढ़ में होता है और जो छत्तीसगढ़ में पढ़ रहा है उसको कहा जा रहा है कि वो राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में ऐसा होता है और आप ऐसा यकीन कर लें। आप अपने चारों ओर के अनुभव से ज्ञान का विस्तार करना बन्द कर देते हैं।

साहित्य का एक शिक्षक अपनी कक्षा में विद्यार्थियों से कहता है कि आओ हम ये कविता पढ़ते हैं और तुम बताओ इसमें क्या अर्थ है और फिर वो कक्षा में बहस को बढ़ाने के लिए यह भी कह सकता है कि मेरे हिसाब से तो इस कविता का ये अर्थ है। तो एक कविता के दो अर्थ संभव हैं और मुझसे अलग सोचने वाले लोग दुनिया में हो सकते हैं ये है लोकतंत्र। लोकतंत्र सहिष्णुता के साथ चलता है कि अनेक विचारधाराएं, अनेक समुदाय, अनेक मत, अनेक विश्वास, अनेक धर्म (मैं जातियों के बारे में नहीं बोल रहा हूं, जाति भिन्नता नहीं विषमता है) विभिन्नताओं के साथ जीना सीख सकना ही लोकतंत्र है। विभिन्नताओं को स्वीकार करना। दुनिया पूरी भिन्नताओं से बनती है। कोई भी दो मनुष्य एक जैसे नहीं है और हम इन भिन्नताओं को स्वीकार कर पाएं। इनका सम्मान कर पाएं तो हम अच्छे मनुष्य हैं और मैं यहां अच्छे नागरिक भी नहीं बोल रहा हूं। क्योंकि मुझे नागरिक शब्द से भी थोड़ी-थोड़ी दिक्कत होने लग गई है आजकल। क्योंकि हमारे देश में नागरिक अच्छा होने की शर्त यह बना दी गई है कि आप अच्छे नागरिक तब हो सकते हैं जब आप पड़ोसी मुल्क से नफरत करें, उसे दो-चार गालियां बकें। मेरे हिसाब से नागरिकता से बड़ा शब्द है मनुष्यता, जो साहित्य सिखाता है। हालाकि नागरिकता को भी ऐसा नहीं होना चाहिए। नागरिकता का एक व्यापक अर्थ होना चाहिए लेकिन फिलहाल हमारे देश में नागरिकता का एक सीमित अर्थ हो गया है कि जब तक आप पाकिस्तान को दो-चार गाली नहीं दोगे तब तक आप अच्छे नागरिक नहीं है। तो इन सब परिस्थियों के बीच में मैं आपसे कह रहा हूं कि जैसे ही आप अपनी कक्षा में कविता को अनेक अर्थों के लिए खोलते हैं वैसे ही आप राजनीति विज्ञान की कक्षा में पढ़ा रहे अपने शिक्षक साथी की मदद करते हैं। आप लोकतंत्र का मूल सिद्धांत समझा देते हैं। आप ये समझा देते हैं कि सब लोग एक तरह से नहीं सोचते हैं। इसके लिए बहुल पाठों का होना जरूरी है।

विद्यार्थी को यदि हम आज्ञाकारी बालक बनाने की बजाय खोजी बनाने की कोशिश करें तो वो नए रास्तों पर चल पाएगा। तब वो कुछ ऐसा ढूंढ़ पाएगा जो हमने आज तक नहीं ढूंढ़ा। यह मैं सिर्फ वैज्ञानिक आविष्कारों के बारे में नहीं कह रहा हूं। समाज को बदलने की इच्छा पैदा करने वाले लोग कहां से पैदा होंगे? अंततः पूरी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? अंततः पूरी शिक्षा का उद्देश्य है मनुष्य को उसके सर्वश्रेष्ठ का इस्तेमाल करना सिखा सकना और आपस में मिलजुल करके मनुष्य जाति आगे बढ़ना सीख सके, मनुष्य जाति आगे बढ़ना सीख सके, एक मनुष्य नहीं। प्रत्येक को उसके भीतर के सर्वश्रेष्ठ का प्रयोग करना आ सके। प्रत्येक मनुष्य को ये आ सके कि मेरे भीतर भी बहुत कुछ अच्छा है। वो अलग-अलग संदर्भों में हो सकता है। एक बहुत ही कमजोर साहित्य का विद्यार्थी बहुत अच्छा नर्तक हो सकता है। आप उसकी किसी भी प्रतिभा को निखार सकें या उसके अन्दर ये उत्साह पैदा कर सकें कि मेरे अन्दर कुछ है। मेरा बचपन या जीवन बेकार नहीं है। यदि मनुष्य जाति सामूहिक रूप से आगे बढ़ सके तो उसके लिए यह जरूरी है कि हम अपनी शिक्षा पद्धति में बच्चों को ये भी सिखा सकें कि समाज में जो कुछ गलत है, जो रूढ़ियां हैं, अंधविश्वास है, जो कुरीतियां हैं उनको बदल सकने की ताकत उसके भीतर है। अगर आप बच्चों को अनुशासित, आज्ञाकारी बालक बनना ही सिखाएंगे तो वो बड़े होकर एक ऐसे युवक के रूप में आगे बढ़ेंगे जो परम्परा को बिना सवाल किए ग्रहण करता है। तब एक ऐसी भीड़ आएगी जो ये कहेगी कि एक नई फिल्म आ रही है जिसके अन्दर हमारे पूजनीय उनको वो कहा गया है उनका अपमान हुआ है, वो युवक मरने, काटने के लिए तैयार हो जाएगा। तो यह न सोच सकने वाली पीढ़ी जो बनती है वो कहां से निकलती है? उसके पीछे अंततः दायित्व शिक्षा का है।

मानविकी का ताल्लुक समाज विज्ञान से भी है, मानविकी का ताल्लुक शांति स्थापना से भी है, मानविकी का ताल्लुक समाज परिवर्तन से भी है, मानविकी का ताल्लुक अच्छे वैज्ञानिक बनाने से भी है। ये सब काम सिर्फ और सिर्फ हम लोग कर सकते हैं। ◆

(यह व्याख्यान अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, धमतरी, छत्तीसगढ़ में दिया गया था। इसे शिक्षा विमर्श को उपलब्ध करवाने के लिए हम उनके आभारी हैं।)

लेखक परिचय : पिछले 20 वर्षों से कॉलेज शिक्षा में साहित्य के प्राध्यापक हैं और जुलाई-दिसम्बर, 2005 में प्रकाशित 'शिक्षा विमर्श' के 'बाल साहित्य विशेषांक' के अतिथि संपादक भी रहे हैं।

संपर्क : 9461179864; himanshuko@gmail.com